https://www.developindiagroup.co.in/

यू.पी.एस.सी

मुख्य परीक्षा अध्ययन सामाग्री

सामान्य अध्ययन

प्रश्नपत्र – 5

(नीतिशास्त्र, समग्रता और अभिरूचि)

''लोकसेवकों के लिए नीतिशास्त्र वैसे ही है, जैसे कि शरीर के लिए खून''
("Ethics are as important for the public servant as blood for the body")

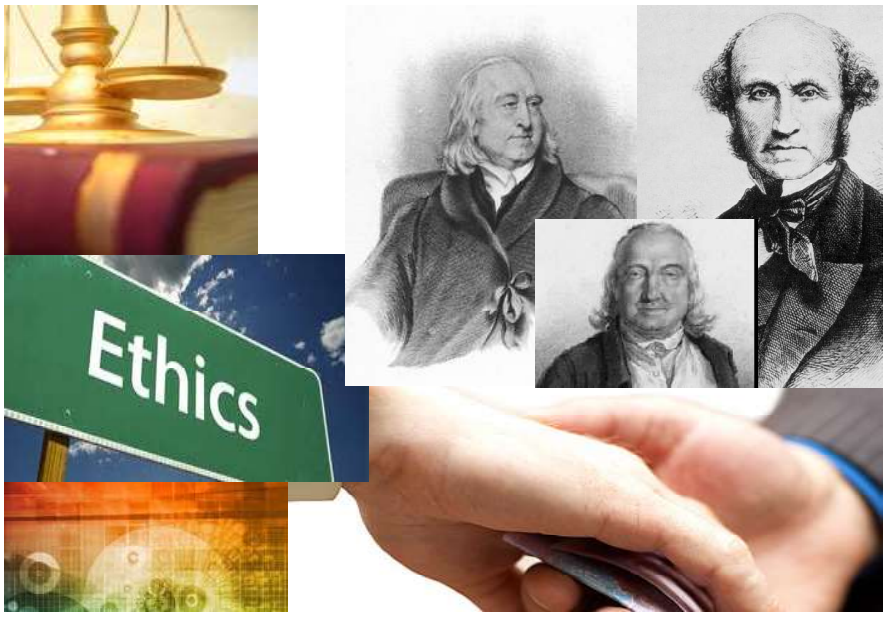

Published By
Develop India Group

Develop India Group

अनुक्रमणिका

- नीतिशास्त्र तथा मानवीय सहसंबंध : मानवीय क्रियाकलापों में नीतिशास्त्र का सारतत्व, इसके निर्धारक और परिणाम, नीतिशास्त्र के आयाम, निजी और सार्वजनिक संबंधों में नीतिशास्त्र 5
- प्रशासन और मानवीय सहसंबंध 6
- प्राधिकार, उत्तरदायित्व और नियंत्रण 9
- मानवीय मूल्य – महान नेताओं सुधारकों और प्रशासकों के जीवन तथा उनके उपदेशों से शिक्षा 15
- चाणक्य 15
- भर्तृहरि 16
- महात्मा गांधी 16
- लोकमान्य तिलक 16
- सुदर्शन 16
- काका कालेलकर 16
- विनोबा भावे 16
- रवींद्रनाथ 16
- प्रेमचंद 16
- स्वामी विवेकानंद 16
- राजेंद्र प्रसाद 17
- प्रेमचंद 17
- अमृतलाल नागर 17
- मूल्य विकसित करनें में परिवार समाज और शैक्षणिक संस्थाओं की भूमिका 17
- अभिवृत्ति – सारांश (कंटेन्ट), संरचना, वृत्ति, विचारधारा तथा आचरण के परिप्रेक्ष्य में इसका प्रभाव एवं संबंध 18
- नैतिक और राजनीतिक अभिरुचि, सामाजिक प्रभाव तथा धारणा 18
- सिविल सेवा के लिए अभिरुचि तथा बुनियादी मूल्य 19
- सत्यनिष्ठा, भेदभाव रहित तथा गैर–तरफदारी, निष्पक्षता, सार्वजनिक सेवा के प्रति समर्पण भाव, कमजोर वर्गों के प्रति सहानुभूति, सहिष्णुता और संवेदना 19
- भारत तथा विश्व के नैतिक विचारकों तथा दार्शनिकों के योगदान 31
- भारत के नैतिक विचारकों तथा दार्शनिकों के योगदान 31
- विश्व के नैतिक विचारकों तथा दार्शनिकों के योगदान 32
- चीन के दार्शनिक 32
- ईरान के दार्शनिक 33
- यूनान के दार्शनिक 33
- आधुनिक युग के दार्शनिक 34
- हाब्ज (1588 से 1679) 35
- क्लार्क (1675 से 1729) 35
- कडवर्थ (1617 से 1688) 35
- शैफ्ट्सबरी (1671 से 1713) 35
- बटलर (1692 से 1752) 35
- ह्यूम (1711 से 1776) 35
- कांट (1724 से 1804) 35
- फिश्टे (1762 से 1814) 35
- हीगेल (1770 से 1831) 35
- डार्विन (1801–1882) 35
- स्पेंसर (1820–1903) 35
- बेंथम (1778–1842) एवं मिल (1806–1873) 36
- कांट (1798–1857) 36
- जेम्स (1842–1910) 36
- ड्यूई (1859–1950) 36
- शोपेनहावर (1788–1860) 36
- हार्टमान (1842–1906) 36
- नीत्शे (1888–1900) 36
- मार्क्स (1818–1883) 36
- 20वीं शताब्दी के दार्शनिक 36
- लोक प्रशासनों में लोक/सिविल सेवा मूल्य तथा नीतिशास्त्र, स्थिति तथा समस्याएं, सरकारी तथा निजी संस्थाओं में नैतिक चिंताएं तथा दुविधाएं 37
- नैतिक मार्गदर्शन के स्रोतों के रूप में विधि, नियम, विनिमय, तथा अंतर्रात्मा 37
- शासन व्यवस्था में नीतिपरक तथा नैतिक मूल्यों का सुदृढ़ीकरण 39
- सुशासन के तत्व 39
- सहभागिता 39
- विधि का शासन 39
- पारदर्शिता 39
- प्रति उत्तरदायित्व 39
- समझौतावादी 39
- साम्यता 39
- प्रभावशीलता और दक्षता 39
- जवाबदेही 39
- भारतीय संदर्भ में सुशासन 40
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों तथा निधि व्यवस्था (फंडिंग) में नैतिक मुद्दे 40
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नैतिकता और आर्थिक प्रणाली की नैतिकता 40
- अंतर्राष्ट्रीय व्यापारिक व्यवहार के आधार के लिए वैश्विक मूल्यों की खोज। 40
- विभिन्न देशों में व्यापारिक नैतिक परम्परा की तुलना। 40
- विभिन्न धार्मिक दृष्टिकोण से व्यापार की नैतिक परम्परा की तुलना।40
- वैश्विक मानकों में अन्तर–उदा. बाल श्रम का उपयोग 41
- प्रतिबंधित राज्यों के साथ अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य स्वीकार्यता 41
- आर्थिक प्रणाली का नीतिशास्त्र 41
- कारपोरेट शासन व्यवस्था 41
- कार्पोरेट शासन का दर्शन 41
- कॉर्पोरेट प्रशासन का इतिहास 42
- कॉर्पोरेट प्रशासन का प्रभाव 42
- संस्थागत निवेशकों की भूमिका 42
- कॉर्पोरेट प्रशासन के पक्ष 43
- आंतरिक कॉर्पोरेट प्रशासन नियंत्रण 45
- कॉर्पोरेट प्रशासन नियंत्रण 45
- कॉर्पोरेट प्रशासन की व्यवस्थित समस्याएं 45
- नियम बनाम सिद्धांत 45
- प्रवर्तन 46

Develop India Group

- दुनिया भर में कॉर्पोरेट प्रशासन मॉडल 46
- एंग्लो–अमेरिकन मॉडल 46
- संहिता और दिशा–निर्देश 46
- कॉर्पोरेट प्रशासन और फर्म निष्पादन 47
- मंडल संघटन 47
- व्यावसायिक नैतिकता 48
- व्यवसायिक नैतिकता में सैद्धांतिक मुद्दे 48
- नैतिक मुद्दे और दृष्टिकोण 48
- आचार अधिकारी 50
- शासन व्यवस्था में ईमानदारी – लोक सेवा की अवधारणा, शासन व्यवस्था और ईमानदारी का दार्शनिक आधार 50
- मैक्स वेबर का लोकशाही मॉडल 51
- वेबरोत्तर लोकशाही 52
- सरकार में सूचना का आदान–प्रदान और पारदर्शिता 53
- राष्ट्रीय डाटा आदान–प्रदान एवं एक्सेस नीति 53
- सूचना तकनीक अधिनियम 2000 54
- 66–एफ : साइबर आतंकवाद के लिए दंड का प्रावधान 54
- सूचना तकनीक कानून, 2000 के अंतर्गत साइबरस्पेस में क्षेत्राधिकार संबंधी प्रावधान 55
- भारतीय दण्ड संहिता (आईपीसी) में साइबर अपराधों से संबंधित प्रावधान 55
- सूचना का अधिकार 55
- सामाजिक लेखा–परीक्षण अथवा अंकेक्षण 57
- नीतिपरक आचार संहिता, आचरण संहिता 59
- केन्द्रीय सिविल सेवाएं (आचरण) नियमावली, 1964 60
- नागरिक घोषणा पत्र, कार्य संस्कृति, सेवा प्रदान करनें की गुणवत्ता 127
- कार्य संस्कृति 127
- सेवा प्रदान करनें की गुणवत्ता 127
- लोक निधि का उपयोग 127
- राष्ट्रपति के वेतन, भत्ते, कार्यालय से जुड़ा व्यय है। 128
- राज्यसभा लोकसभा के सभापतियों, उपसभापतियों के वेतन भत्ते 128
- ऋण भार जिनके लिये भारत सरकार उत्तरदायी है, ब्याज सहित, 128
- सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों के वेतन भत्ते पेंशन तथा उच्च न्यायालय की पेंशने इस पर भारित है। 128
- महालेखानियंत्रक तथा परीक्षक के वेतन भत्ते 128
- किसी न्यायिक अवार्ड/डिक्री/निर्णय के लिये आवश्यक धन जो न्यायालय/ट्रिब्यूनल द्वारा पारित हों 128
- संसद द्वारा विधि बना कर किसी भी व्यय को भारित व्यय कहा जा सकता है। 128
- भ्रष्टाचार की चुनौतियां 128

Develop India Group

नीतिशास्त्र, समग्रता और अभिरूचि
(Ethics, Integrity, and Aptitude)

नीतिशास्त्र तथा मानवीय सहसंबंध

मानवीय क्रियाकलापों में नीतिषास्त्र का सारतत्व, इसके निर्धारक और परिणाम, नीतिषास्त्र के आयाम, निजी और सार्वजनिक संबंधों में नीतिषास्त्र

यद्यपि नीतिशास्त्र की परिभाषा तथा क्षेत्र प्रत्येक युग में मतभेद के विषय रहे हैं, फिर भी व्यापक रूप से यह कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र में उन सामान्य सिद्धांतों का विवेचन होता है जिनके आधार पर मानवीय क्रियाओं और उद्देश्यों का मूल्यांकन संभव हो सके। अधिकतर लेखक और विचारक इस बात से भी सहमत हैं कि नीतिशास्त्र का संबंध मुख्यतः मानदंडों और मूल्यों से है, न कि वस्तुस्थितियों के अध्ययन या खोज से, और इन मानदंडों का प्रयोग न केवल व्यक्तिगत जीवन के विश्लेषण में किया जाना चाहिए वरन् सामाजिक जीवन के विश्लेषण में भी करना चाहिए।

नैतिक मतवादों का विकास दो विभिन्न दिशाओं में हुआ है। एक ओर तो नीतिशास्त्रज्ञों ने *नैतिक निर्णय* का विश्लेषण करते हुए उचित–अनुचित संबंधी मानवीय विचारों के मूलभूत आधार का प्रश्न उठाया है। दूसरी ओर उन्होंने नैतिक आदर्शों तथा उन आदर्शों की सिद्धि के लिए अपनाए गए मार्गों का विवेचन किया है। नीतिशास्त्र का पहला पक्ष चिंतनशील है, दूसरा निर्देशनशील है। इन दोनों को हमें एक साथ देखना होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में दोनों संलग्न और अविभाज्य हैं।

मनुष्य के व्यवहार का अध्ययन अनेक शास्त्रों में अनेक दृष्टियों से किया जाता है। मानव व्यवहार, प्रकृति के व्यावहारों की भांति, कार्य–कारण–श्रृंखला के रूप में होता है और उसका कारणमूलक अध्ययन एवं व्याख्या की जा सकती है। मनोविज्ञान यही करता है। किंतु प्राकृतिक व्यावहारों को हम अच्छा या बुरा कहकर विशेषित नहीं करते। रास्ते में अचानक वर्षा आ जाने से भीगने पर हम बादलों को कुवाच्य नहीं कहने लगते। इसके विपरीत साथी मनुष्यों के कर्मों पर हम बराबर भले–बुरे का निर्णय देते हैं। इस प्रकार निर्णय देने की सार्वभौम मानवीय प्रवृत्ति ही आचारदर्शन की जननी है। नीतिशास्त्र में हम व्यवस्थित रूप से चिंतन करते हुए यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि हमारे अच्छाई–बुराई के निर्णयों का बुद्धिग्राह्य आधार क्या है। कहा जाता है, नीतिशास्त्र नियामक अथवा आदर्शान्वेषी विज्ञान है, जबकि मनोविज्ञान याथार्थन्वेषी शास्त्र है। निश्चय ही शास्त्रों के इस वर्गीकरण में कुछ तथ्य है, पर वह भ्रामक भी हो सकता है। उक्त वर्गीकरण यह धारणा उत्पन्न कर सकता है कि आचारदर्शन का काम नैतिक व्यवहार के नियमों का अन्वेषण तथा उद्घाटन नहीं है, अपितु कृत्रिम ढंग से वैसे नियमों को मानव समाज पर लाद देना है। किंतु यह धारणा गलत है। नीतिशास्त्र जिन नैतिक नियमों की खोज करता है वे स्वयं मनुष्य की मूल चेतना में निहित हैं। अवश्य ही यह चेतना विभिन्न समाजों तथा युगों में विभिन्न रूप धारण करती दिखाई देती है। इस अनेकरूपता का प्रधान कारण मानव प्रकृति की जटिलता तथा मानवीय श्रेय की विविधरूपता है। विभिन्न देशकालों के विचारक अपने समाजों के प्रचलित विधि निषेधों में निहित नैतिक पैमानों का ही अन्वेषण करते हैं। हमारे अपने युग में ही, अनेक नई पुरानी संस्कृतियों के सम्मिलन के कारण, विचारकों के लिए यह संभव हो सकता है कि वे अनगिनत रूढ़ियों तथा सापेक्ष्य मान्यताओं से ऊपर उठकर वस्तुतः सार्वभौम नैतिक सिद्धांतों के उद्घाटन की ओर अग्रसर हों।

नीतिशास्त्र का मूल प्रश्न क्या है, इस संबंध में दो महत्वपूर्ण मत पाए जाते हैं। एक मंतव्य के अनुसार नीतिशास्त्र की प्रधान समस्या यह बतलाना है कि मानव जीवन का परम श्रेय (समम बोनम) क्या है। परम श्रेय का बोध हो जाने पर हम शुभ कर्म उन्हें कहेंगे जो उस श्रेय की ओर ले जाने वाले हैं। विपरीत कर्मों को अशुभ कहा जाएगा। दूसरे मंतव्य के अनुसार नीतिशास्त्र का प्रधान कार्य शुभ या धर्मसंमत (राइट) की धारणा को स्पष्ट करना है। दूसरे शब्दों में, नीतिशास्त्र का कार्य उस नियम या नियम समूह का स्वरूप स्पष्ट करना है जिस या जिनके अनुसार अनुष्ठित कर्म शुभ अथवा धार्मिक होते हैं। ये दो मंतव्य दो भिन्न कोटियों की विचार पद्धतियों को जन्म देते हैं।

परम श्रेय की कल्पना अनेक प्रकार से की गई है। नैतिकता के नियम–यदि वैसे कोई नियम होते हैं तो–किस कोटि के हो सकते हैं। नियम या कानून की धारणा या तो राज्य के दंडविधान से आती है या भौतिक विज्ञानों से, जहाँ प्रकृति के नियमों का उल्लेख किया जाता है। राज्य के कानून एक प्रकार के शासकों की न्यूनाधिक नियंत्रित इच्छा द्वारा निर्मित होते हैं। वे कभी–कभी कुछ वर्गों के हित के लिए बनाए जाते हैं, उन्हें तोड़ा भी जा सकता है और उनके पालन से भी कुछ लोगों को हानि हो सकती है। इसके विपरीत प्रकृति के नियम अखंडनीय होते हैं। राज्य के नियम बदले जा सकते हैं, किंतु प्रकृति के नियम अपरिवर्तनीय हैं। नीति या सदाचार के नियम अपरिवर्तनीय, पालनकर्ता के लिए कल्याणकर एवं अखंडनीय समझे जाते हैं। इन दृष्टियों से नीतिशास्त्र के नियम स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों के पूर्णतया समान होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य अथवा मानव प्रकृति दो भिन्न कोटियों के नियमों के नियंत्रण में व्यापृत होती है। एक ओर तो मनुष्य उन कानूनों का वशवर्ती है जिनका उद्घाटन या निरूपण भौतिक विज्ञान, रसायनशास्त्र, प्राणिशास्त्र, मनोविज्ञान आदि तथ्यान्वेषी (पाजिटिव)

Develop India Group

शास्त्रों में होता है और दूसरी ओर स्वास्थ्य विज्ञान, तर्कशास्त्र आदि आदर्शान्वेषी विज्ञानों के नियमों का, जिनसे वह बाध्य तो नहीं होता, पर जिनका पालन उसके सुख तथा उन्नति के लिए आवश्यक है। नीतिशास्त्र के नियम इस दूसरी कोटि के होते हैं।

प्रशासन और मानवीय सहसंबंध

मानवीय सम्बंधों से हमारा तात्पर्य मुख्यतः नियोक्ताओं और कार्मिकों के मध्य उन सम्बंधों से है जो कानूनी मान्यताओं द्वारा नियंत्रित नहीं होते। ये सम्बंध कानूनी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से संबंधित हैं। बंद प्रतिमान से जिस दक्षता की अपेक्षा थी वह आवश्यक स्तर तक प्राप्त नहीं हो पाई और संगठन के कार्यकर्त्ताओं द्वारा संगठन छोड़ने की प्रवृत्ति और अपेक्षानुरूप कार्य सम्पादन में कमी आदि प्रवृत्ति देखी गई। टेलरवाद से उत्पादकता में वृद्धि तो हुई, लेकिन शीघ्र ही यह अप्रासंगिक भी हो गया, क्योंकि श्रमिकों में व्याप्त उदासीनता, कुंठा तथा अवसाद ने कार्य के प्रति उनमें अरुचि उत्पन्न कर दी। इन सिद्धांतों ने संगठन की नीति, नियम व संरचना और संगठन के विकास पर ही ध्यान दिया लेकिन मानवीय पक्ष की अनदेखी की।

इसके विपरीत मानव–सम्बंध सिद्धांत व्यक्तियों और उनकी प्रेरणाओं पर बल देता है। मानव–सम्बंध सिद्धांत की उत्पत्ति का श्रेय एल्टन मेयो व उनके सहयोगियों को जाता है जो 1924 से 1932 के मध्य संपन्न 'हॉथोर्न प्रयोग' के निष्कर्षों का परिणाम है। मानव सम्बंध सिद्धांत ने व्यक्ति के तौर पर श्रमिक और उसके कार्यसमूह के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्षों पर बल दिया। इसलिए इस सिद्धांत को सामाजिक–मनोवैज्ञानिक सिद्धांत भी कहा जाता है।

मेयो ने अपना अध्ययन शारीरिक, भौतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को ध्यान में रखते हुए मजदूरों के व्यवहार और उनकी उत्पादन क्षमता पर केन्द्रित किया और अपने अध्ययन को उन्होंने क्लिनिकल माना। इसलिए इस सिद्धांत को 'क्लिनिकल सिद्धांत' भी कहते हैं।

मेयो के शोधकार्य के समय अमेरिका औद्योगिक संकट से गुजर रहा था। मेयो ने अपना ध्यान औद्योगिक श्रमिकों की थकान, दुर्घटना, उत्पादन स्तर, विश्राम अवधि, कार्य स्थितियों इत्यादि पर केंद्रित किया।

हॉथोर्न प्रयोग : मानव सम्बंध सिद्धांत हॉथोर्न प्रयोगों का परिणाम है। अमेरिका के शिकागो शहर में वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी के हॉथोर्न प्लांट में 1924 में यह प्रयोग हॉथोर्न प्लांट के निरीक्षक जॉर्ज पीनॉक के नेतृत्व में तथा आगे चलकर मेयो के नेतृत्व में सम्पन्न हुए। ये प्रयोग इस प्रकार हैं :

- **महान प्रकाश व्यवस्था प्रयोग (1924–27) :** महिला मजदूरों के दो पृथक दलों का चयन किया गया। प्रत्येक दल में छह महिलाएं सम्मिलित थीं और उन्हें समान कार्य सौंपें गए। कमरों को समान रूप से प्रकाश दिया गया, जिससे प्रकाश के विभिन्न स्तरों पर उत्पादकता का अध्ययन किया जा सके। प्रारम्भ में कार्यस्थितियां स्थिर थीं फिर धीरे–धीरे इन स्थितियों में परिवर्तन किया गया, जिससे इन स्थितियों का उत्पादन पर प्रभाव आंका जा सके। इस शोध से पता चला कि प्रकाश की विभिन्न स्थितियों में दोनों दलों के उत्पादन में वृद्धि हुई। मेयो ने बताया कि शोध के अंतर्गत प्रयोग के कमरे पर अधिक ध्यान दिए जाने से वे सामाजिक इकाई बन गए और यहां भागीदारी की भावना विकसित हो गई और उत्पादन में विभिन्न नकारात्मक स्थितियों के बावजूद वृद्धि हुई।

  दूसरे प्रयोग में श्रमिकों को एक बड़े समूह से चुना गया तथा इन पर पर्यवेक्षण द्वारा कुछ अंकुश रखा गया और श्रमिकों को सुझाव देने के लिए प्राधिकृत किया गया। कार्य–स्थितियों में भी परिवर्तन किया गया, जिसमें विश्रामकाल और दिन की कार्य–अवधि में परिवर्तन किया गया। इस प्रयोग के आधार पर मेयो ने निष्कर्ष दिया कि श्रमिकों को महत्त्व दिए जाने से उनके द्वारा कार्य करने की चेष्टा में वृद्धि हुई। साथ ही पाया गया कि श्रमिक ज्यादा पर्यवेक्षण को पसंद नहीं करते हैं। मेयो ने महसूस किया कि कार्य–संतुष्टि काफी हद तक कार्यकारी समूह के अनौपचारिक सामाजिक अभिरचना पर निर्भर है तथा श्रमिकों को ऐसे रखना चाहिए, जिससे वह अपनी आवश्यकताएं खुलकर बताएं और पर्यवेक्षकों से स्वतंत्रतापूर्वक विचार विनिमय करें।

  इन दोनों प्रयोगों में पाया गया कि यांत्रिक कारकों का श्रमिकों की उत्पादकता एवं संतुष्टि के बीच कोई प्रत्यक्ष सकारात्मक सम्बंध नहीं है।

- **साक्षात्कार परीक्षण (मानवीय भावनाएं एवं अभिवृत्तियां प्रयोग) (1928–31) :** 1928 में मेयो और सहयोगियों ने मानवीय मनोवृत्तियों और भावनाओं पर एक गहन साक्षात्कार आयोजित किया। श्रमिकों से कहा गया कि वे प्रबंधकों के व्यवहार आदि पर अपनी पसंद और नापसंद स्वतंत्र और स्पष्ट रूप से बताएं। कुछ प्रारम्भिक कठिनाईयों के बाद यह महसूस किया गया कि यद्यपि कोई सुधार लागू नहीं किया गया फिर भी श्रमिकों की मानसिक प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ। कंपनी की समस्याओं पर श्रमिकों ने जानकारी प्राप्त करने की विधि की सराहना की तथा जब उन्हें स्वतंत्र अभिव्यक्ति की अनुमति मिली तो उन्हें प्रसन्नता हुई और उनका मनोबल बढ़ा। पर्यवेक्षकों में भी परिवर्तन आया क्योंकि शोध टीम ने उनके काम को बहुत नजदीक से देखा और अधीनस्थ लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक बात करने की अनुमति प्रदान की। शोध टीम ने यह महसूस किया कि स्वयं उन लोगों को अपने साथियों के साथ व्यवहार करने और उन्हें समझने की नई तकनीकें सीखने को मिली।

  मेयो और सहयोगियों ने महसूस किया कि पारिवारिक त्रासदियों, बीमारियों आदि व्यक्तिगत समस्याओं में श्रमिकों का उलझा होना ही उद्योग में उसकी क्षमता कम करता है। इन समस्याओं में श्रमिकों के उलझने को मेयो ने 'निराशाजनक स्वप्न' कहा है।

- **बैंक वायरिंग प्रयोग (1931–32) :** इसमें समूह के व्यवहार का विश्लेषण किया गया। श्रमिकों के तीन ऐसे समूह चुने गए जिनके काम एक–दूसरे से जुड़े थे। मजदूरी का भुगतान सामूहिक प्रोत्साहन योजना के आधार पर किया गया। प्रत्येक सदस्य को अपना हिस्सा समूह द्वारा किए गए कुल कार्य के आधार पर मिलता था। यहां यह

Develop India Group

पाया गया कि श्रमिकों का कार्य करने का अपना स्वयं का मानक था जो प्रबंधकों द्वारा निर्धारित लक्ष्य से कम था। श्रमिक वर्ग अपने सदस्यों को इस मानदंड से कम या अधिक उत्पादन नहीं करने देते थे। यद्यपि वे अधिक उत्पादन करने में समर्थ थे। उनमें बहुत एकता थी और उनकी सामाजिक संरचना व अनौपचारिक दबाव गलती करने वाले को ठीक राह पर लाने के लिए काफी थे। इसके लिए संगठन के समूह ने निम्नलिखित नियम बना रखे थे :

1. किसी को बहुत अधिक काम नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो 'रेट बस्टर' (शेखीखोर) माना जाएगा।
2. किसी को बहुत कम काम भी नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह 'चेस्लर' (कामचोर) कहलाएगा।
3. किसी को सुपरवाइजर से अपने साथी के बारे में बुरी बात भी नहीं करनी चाहिए। ऐसा व्यक्ति 'स्क्वीलर' (चुगलखोर) कहलाएगा।
4. किसी को सामाजिक दूरी नहीं अपनानी चाहिए और कार्यालयीय तरीके से पेश नहीं आना चाहिए, जैसे कि यदि कोई 'इंस्पेक्टर' है तो उसे उस तरह का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

इस आधार पर निष्कर्ष निकाला गया कि संगठन में मानवीय पक्ष को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। तकनीकी और आर्थिक पक्ष पर अधिक बल देने की अपेक्षा प्रबंधकों को मानवीय स्थितियों, प्रेरणा और श्रमिकों से सम्बंध स्थापित करने पर ध्यान देना चाहिए। मेयो का विचार था कि सहयोग प्राप्त करने के लिए सत्ता की अवधारणा विशेषज्ञता की अपेक्षा सामाजिक कौशल पर आधारित होनी चाहिए। मानव–सम्बंध सिद्धांत का सार निम्नलिखित बातों में निहित था :

1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में
2. अनौपचारिक सम्बंध की उपस्थिति
3. सहभागी प्रबंध की अवधारणा का जन्म

मेयो का योगदान

1. **प्रथम शोध (फिलाडेल्फिया प्रयोग) :** मेयो ने 1923 में फिलाडेल्फिया के निकट एक कपड़ा मिल में अपना 'पहला प्रयोग' प्रारंभ किया। उस समय यह मिल अपने श्रमिकों को सभी सुविधाएं देती थी और एक आदर्श संगठन मानी जाती थी। प्रबंधक वर्ग प्रगतिशील और मानवीय था, फिर भी उस मिल के एक विशेष खंड में गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। इस 'मिश्रित–कताई शाखा' में श्रमिक परिवर्तन की दर बहुत ज्यादा थी। मेयो का 'प्रथम शोध' यहीं शुरू हुआ। मेयो ने मिश्रित कताई विभाग की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन किया तथा प्रबंधकों की सहायता से प्रयोग प्रारम्भ किए। प्रारम्भ में उन्होंने इन कार्मिकों की प्रत्येक टीम में विश्राम अवधि लागू की जिसके परिणाम उत्साहवर्धक रहे। प्रबंधकों ने विश्राम अवधि का पूरा नियंत्रण श्रमिकों के हाथों में दे दिया जिससे उनमें विचार–विमर्श बढ़ा और एक नई चेतना प्रारम्भ हुई और समूह हित की भावना को बल मिला।
2. **हॉथोर्न प्रयोग** (विगत पेज पर देखें)
3. **उद्योगों में अनुपस्थितिवाद :** मेयो ने 1943 में यह अध्ययन किया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उद्योगों में श्रमिकों का परिवर्तन और अनुपस्थिति बहुत अधिक हो गई। प्रबंधक इस स्थिति से अधिक परेशान थे। मेयो और सहयोगियों ने पाया कि श्रम परिवर्तन और अनुपस्थितिवाद वाले उद्योगों में न तो अनौपचारिक समूह थे और न ही सरल नेतृत्व था जो श्रमिकों को एक समूह के रूप में विकसित कर सके। मेयो ने सुझाव दिया कि जहां तक संभव हो प्रबंधकों को अनौपचारिक समूह का गठन करने के लिए प्रोत्साहित देना चाहिए और श्रमिकों की परेशानियों को सहानुभूति के साथ दूर करना चाहिए। श्रमिक को मशीन न समझकर सामाजिक मनुष्य समझना चाहिए।

मेयो की उनके विचारों की दृष्टि से आलोचना की गई। मेयो ने अपने विचारों में संगठनों को शामिल नहीं किया इसलिए स्वतंत्र समाज में संगठनों की भूमिका न समझ पाने के लिए उनकी आलोचना की गई। लारेन बारिट्ज आदि ने मेयोवादियों को यूनियन विरोधी तथा प्रबंधकों का पक्षधर कहकर आलोचना की।

मार्श और साइमन ने इसे 'गारबेज केन मॉडल' कहा क्योंकि इनमें तार्किकता की कमी और अति सरल समाधानों की उपस्थिति थी जो प्रत्यक्षतः अनेक प्रकार की जटिल समस्याओं के समाधान में पर्याप्त नहीं थी।

एलेक्स कैरी ने हॉथोर्न शोधकर्त्ताओं की यह कहकर आलोचना की कि उनमें वैज्ञानिक आधार का अभाव था। हॉथोर्न के पहले अध्ययन में जिन लड़कियों को चुना गया, वे पहले से शोध के लिए तैयार थीं और उन्होंने सकारात्मक सहयोग दिया। इस आधार पर सिद्धांत का विकास नहीं किया जा सकता।

मेयो ने आर्थिक प्रेरकों को महत्त्व नहीं दिया इसलिए वे वास्तविकता की परिधि से बाहर चले गए।

यूनाइटेड ऑटो वर्क्स के कर्मचारियों ने मेयो व उनके समर्थकों की 'गाय जैसे समाजशास्त्री' कहकर आलोचना की, क्योंकि मेयो ने श्रमिकों की वास्तविक व भौतिक समस्याओं का समाधान उपलब्ध कराने के बजाए मात्र उन्हें पुचकारने पर ध्यान दिया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद मेयो का योगदान संगठन में आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम सांगठनिक व्यक्ति को सामाजिक प्राणी की संज्ञा दी तथा अनौपचारिक संगठन को अपरिहार्य बताया। मनुष्य की आर्थिक जरूरतों से परे हटकर उसके सामाजिक–मनोवैज्ञानिक पहलू पर प्रकाश डाला गया, जिसने अग्रिम अध्ययनों एवं व्यवहारवादी विचारधारा के विकास के लिए आधार प्रदान किया। उनकी सहभागी प्रबंधन की अवधारणा आज आधुनिक प्रबंध का हृदय है।

मेरी पार्कर फॉलेट

मेरी पार्कर फॉलेट के विचारों को प्रशासनिक चिंतन में शास्त्रीय विचारधारा और व्यवहारवाद के बीच सेतु माना जाता है। अपनी कृति 'क्रिएटिव एक्सपीरिऐंस' 1924, में सांगठनिक सिद्धांत के सामाजिक–मनोवैज्ञानिक पक्षों पर बल दिया। फॉलेट के विचारों का केन्द्र बिंदु रचनात्मक

Develop India Group

मतभेदों का विश्लेषण है। उन्होंने संगठन और मानवीय सम्बंधों का न केवल विश्लेषण किया बल्कि अपने सिद्धांतों की व्यावहारिकता से परिचय भी कराया। फॉलेट के प्रमुख विचार निम्नलिखित शीर्षकों में समझे जा सकते हैं :

रचनात्मक मतभेद : फॉलेट के अनुसार किसी संगठन में मतभेदों की उपस्थिति सामान्य प्रक्रिया है। उन्होंने मतभेदों के सकारात्मक पहलुओं पर बल दिया और माना कि मतभेद सदैव दुष्प्रकार्यात्मक नहीं होते हैं। मतभेद परस्पर विरोधों का एक बेकार विद्रोह नहीं है, बल्कि एक सामान्य प्रक्रिया है जिससे समाज के बहुमूल्य भेद स्वयं को सभी संबद्ध लोगों की समृद्धि के लिए प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिगत मतभेदों के कारण संघर्ष मानवीय संगठनों में अपरिहार्य हैं। अतः उन्हें मात्र बुरा कह कर आलोचना करने के स्थान पर उनका लाभ उठाने का प्रयास किया जाना चाहिए। फॉलेट के अनुसार मतभेद इच्छाओं के पारस्परिक प्रभावों से उत्पन्न एक क्षण है जिससे निपटने के लिए यदि ध्वंसात्मक तरीके हैं तो उसी प्रकार सृजनात्मक उपाय भी हो सकते हैं। यदि उपयुक्त उपाय अपनाए जाएं तो यह मतभेद प्रगति के लिए आरोग्य और पूर्वाभ्यास के लक्षण सिद्ध हो सकते हैं। उन्होंने संगठन में मतभेदों को दूर करने हेतु निम्नलिखित उपायों का विश्लेषण किया है :

1. **प्रभुत्व :** यह मतभेदों को दूर करने का सरलतम साधन है, जिसमें एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त करता है। हालांकि यह उपाय दीर्घकालिक दृष्टिकोण से संगठन के स्वास्थ्य के हित में नहीं माना जाता।
2. **समझौता :** इस प्रकार के उपाय में दोनों पक्ष अपनी–अपनी मांगों के कुछ पक्षों का त्याग कर किसी निष्कर्ष को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। कोई भी पक्षकार इसके लिए सामान्यतः सहमत नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक पक्ष को अपनी मांगों का कुछ अंश त्यागना पड़ता है। हालांकि यह व्यापक रूप से प्रचलित उपाय है।
3. **एकीकरण :** इस प्रकार के उपाय में दोनों पक्षों के हितों को मिलाकर एक सामान्य हित का निरूपण किया जाता है और किसी पक्ष को अपनी इच्छाओं या मांगों का दमन अथवा त्याग नहीं करना पड़ता है। यह सर्वाधिक वांछनीय उपाय है, क्योंकि इससे दोनों ही पक्षकारों को अपने अभीष्ट की प्राप्ति होती है।

समझौते की तुलना में फॉलेट एकीकरण को अधिक श्रेयस्कर मानती हैं और एकीकरण को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाए बताती हैं :

1. एकीकरण को प्राप्त करने का प्रथम चरण मतभेदों को बाहर निकालना है। एकीकरण तब आसान होता है जब एकीकरणकर्त्ता को यह स्पष्ट हो कि पक्षकारों के मध्य विवाद के वास्तविक कारक, बिंदु और मुद्दे क्या हैं। प्रायः यह देखा गया है कि विवाद के मुद्दे बहुत छोटे व सामान्य होते हैं। इस प्रकार एक बार यह तथ्य निश्चित हो जाने के बाद एकीकरण की शेष प्रक्रिया आसान हो जाती है।
2. एकीकरण का दूसरा चरण सम्पूर्ण विषय को छोटे टुकड़ों में बांटना है अर्थात् मतभेद में शामिल दोनों पक्षों की मांगों पर विचार करना और उनको संघटक हिस्सों में बांटना आवश्यक होता है। इसका अभिप्राय यह भी है कि पक्षकारों की मांगों के मनोवैज्ञानिक पहलुओं को भी समझना चाहिए, क्योंकि की जा रही मांग अपने प्रतीकात्मक अर्थों में प्रयुक्त हो सकती है।
3. तीसरा चरण मतभेद का पूर्वानुमान है, जिसका अभिप्राय आने वाले मतभेदों का आंकलन नहीं बल्कि वह दूरदर्शिता है कि जब पक्षकारों को हल का मसविदा प्रस्तावित किया जाएगा तो मतभेद किस ओर उन्मुख होगा। यह शतरंज के खेल की भांति हैं, जहां प्रत्येक चाल उसके परिणामों और प्रत्युत्तरों की गणना कर की जाती है।

फॉलेट का एकीकरण पर विचार उसमें आने वाली बाधाओं को भी निरूपित करता है। उनका विचार है कि एकीकरण इतनी सुगम प्रक्रिया नहीं है और इसके लिए उच्च मेधा, गहन बोध, विभेद और खोजी प्रवृत्ति की आवश्यकता पड़ती है। उनका विचार है कि पक्षकारों में कुछ लोग एकीकरण के स्थान पर प्रभुत्व को महत्ता देने वाले हो सकते हैं, क्योंकि उन्हें शासन करने में आनन्द की अनुभूति होती है। यदा–कदा मतभेदों को अथवा समस्याओं को सिद्धांत में ढाल कर प्रस्तावित किया जाता है। यदि व्यक्ति अपनी समस्याओं का सैद्धांतीकरण त्याग कर उन्हें सामान्य मसलों की तरह प्रस्तुत करें तो असहमतियां स्वतः दूर हो सकती हैं। अतः मात्र बौद्धिक समझौते से मतभेद दूर नहीं होता। एकीकरण में अन्य बाधा प्रयुक्त की गई भाषा की भी होती है जो कई बार नए विवाद को उत्पन्न कर देती है। अंततः एकीकरण में सबसे बड़ी समस्या प्रशिक्षण के अभाव से भी उत्पन्न होती है। प्रायः विवादों के संदर्भ में पूर्व निर्धारित संकल्पनाओं के आधार पर हल प्रस्तावित किए जाते हैं जो अपूर्ण होते हैं। यदि मध्यस्थ या एकीकरणकर्त्ता भली–भांति प्रशिक्षित हों तो एकीकरण प्राप्त करना अधिक सुगम होगा।

आदेशों का विवरण : एकीकरण में आने वाली बाधाओं का विश्लेषण करते समय फॉलेट ने आदेशों के दिए जाने की प्रक्रिया पर भी विचार किया। फॉलेट के अनुसार लोग आदेशों के मूल में निहित सिद्धांतों को जाने बिना प्रतिदिन आदेश देते हैं जबकि प्रदत्त गतिविधि के मूल में दिए गए सिद्धांत को जानना आवश्यक है तभी आदेशों की प्रभाविता सुनिश्चित होगी और समन्वय प्राप्त हो सकेगा। विभिन्न सिद्धांतों पर विचार करने के उपरांत आदेश देना चाहिए। व्यवहार्यतः व्यक्ति यह मानते हैं कि आदेश देना आसान है और वे अपेक्षा करते हैं कि अन्य व्यक्ति बिना किसी प्रश्न के उनके आदेशों का अनुपालन करेंगें। व्यवहार में आदेश देना एक कठिन कार्य है। पुरानी आदतें, प्रशिक्षण, अनुभव, विश्वास और पूर्वाग्रह इत्यादि ऐसे कुछ तत्व हैं जो आदेश प्राप्तकर्त्ता के आदेश मानने की क्षमता को प्रभावित करते हैं। अतः फॉलेट का मानना है कि जब तक ये आदतें और पुराने रवैये नहीं बदलते, तब तक व्यक्ति को बदलना कठिन है और परिणामस्वरूप आदेशों का पालन बाधित होता रहता है। फॉलेट के अनुसार आदेश देने की प्रक्रिया में निम्नलिखित चार चरण हैं :

1. एक सचेतन व्यवहार, जो उन सिद्धांतों को व्यवहार में लाता है, जिसके जरिए किसी भी मुद्दे पर कार्यवाही करना संभव हो।
2. एक जिम्मेदार व्यवहार, जिससे यह निश्चित हो कि कौन से

Develop India Group

सिद्धांत पर अमल किया जाए।

3. एक प्रयोगात्मक व्यवहार, जिससे प्रयोग किए जाएं और परिणाम देखें जाएं।
4. परिणामों को एकत्र करना।

स्पष्ट है कि आदेश देना एक जटिल प्रक्रिया है और इसलिए लोग या तो आदेश देना बंद कर देते हैं अथवा अपने आदेशों का पालन करवाने के लिए अधिनायकवादी व्यवहार करने लगते हैं। दोनों ही स्थितियां समन्वय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। अंततः फॉलेट का विचार है कि आदेश की पारिस्थितिकी का भी ध्यान रखना चहिए अर्थात् किन परिस्थितियों में कोई आदेश दिया जा रहा है। चूंकि परिस्थितियां स्थिर नहीं होतीं अतः आदेश भी उनके अनुसार अनुकूलित अथवा बदलते रहना चाहिए। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि लोग किसी के अधीन या मातहत होने की भावना को पसंद नहीं करते। अतः प्रभावी समन्वय तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब आदेशकर्त्ता यह विश्लेषण कर ले कि किस मात्रा में और कितना आदेश दिया जाना आवश्यक है और यह भी कि आदेश का कितना अनुपालन हो सकेगा। संगठन की गतिविधियों में निरीक्षण आवश्यक है, किंतु अधीनस्थ इसे पसंद नहीं करते अतः समन्वय बाधित होता है। फॉलेट का सुझाव है कि निरीक्षण मात्र इसलिए नहीं होना चाहिए कि निरीक्षण किया जाना है, बल्कि उससे कुछ प्राप्त होना चाहिए अर्थात् ऐसा निरीक्षण समन्वय प्राप्त करने में सहायक हो और विवाद की स्थितियों में एकीकरण लाने के लिए पूर्वानुमान करने में सहायक हो।

आदेशों का निर्वैयक्तिकरण : फॉलेट का यह विचार है कि आदेश देना एक जटिल प्रक्रिया है। इसलिए लोग या तो आदेश देना बंद कर देते हैं या अधिनायकवादी प्रवृत्ति से अपने आदेश मनवाते हैं। फॉलेट ने सुझाव दिया कि आदेश देने में मालिकपन से बचना चाहिए और आदेश की प्रकृति निर्वैयक्तिक होनी चाहिए ताकि सभी संबद्ध लोग उसका पालन करें। यदि आदेश परिस्थिति का अंग है तो आदेश देने वाला और आदेश प्राप्तकर्त्ता दोनों ही परिस्थितिवश इस स्थिति में होते हैं कि किसी से किसी व्यक्ति विशेष को आदेश देने का प्रश्न नहीं उठता। फॉलेट का विचार है कि दो विभागों के प्रमुख एक दूसरे को आदेश नहीं देते वरन् परिस्थिति का विचार करते हैं और जैसी परिस्थिति की मांग होती है वैसे निर्णय लिए जाते हैं। निर्वैयक्तिक आदेश का अर्थ यह नहीं है कि अधिकार प्रयोग में नहीं लाए जाते, बल्कि इसका अर्थ है परिस्थिति के अनुसार अधिकार का प्रयोग करना।

समन्वय : फॉलेट ने योजना और समन्वय को अन्तर्सम्बन्धित माना है। उनका विचार है कि राष्ट्रीय स्तर पर निर्मित केन्द्रीय योजना स्थानीय स्तर पर समन्वय के अभाव में विफल होती है। अतः समन्वय इसका आवश्यक पहलू है। फॉलेट के लिए समन्वय 'विभिन्न अंगों का समरस क्रम' है। उन्होंने समन्वय के संदर्भ में चार प्रमुख सिद्धांतों का निरूपण किया जो इस प्रकार हैं :

1. **प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा समन्वय :** इसके अन्तर्गत सम्बन्धित व्यक्तियों का पद प्राधिकार एवं सांगठनिक पदसोपान से परे, प्रत्यक्ष क्रम में होना आवश्यक है। उर्ध्वाधर आदेश की शृंखला के समान ही क्षैतिज संचार भी ऐसे समन्वय के लिए आवश्यक है।
2. **प्रारम्भिक चरणों में समन्वय :** इस प्रकार के समन्वय में आवश्यक है कि समन्वय करने के लिए सम्बद्ध व्यक्तियों को नीति निर्माण के चरण अथवा आरम्भिक चरण से ही समन्वय स्थापित करना चाहिए जो नीतियों के क्रियान्वयन तक जारी रहे। इस प्रकार की सहभागिता अभिप्रेरणा और मनोबल को बढ़ाने में सहायक होती है।
3. **निरंतर टना के रूप में समन्वय :** फॉलेट ने समन्वय को एक निरंतर टना माना है अर्थात् यह योजना निर्माण से क्रियान्वयन तक और क्रियान्वयन से पुनः योजना निर्माण तक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है।
4. **सहसम्बंध प्राटना के रूप में समन्वय :** समन्वय एक सहसम्बन्धित टना है। इसमें सम्बन्धित सभी टकों को एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित होना चाहिए। इसीलिए फॉलेट ने संगठन को अन्तर्सम्बन्धित अंगों की एक प्रणाली माना। फॉलेट ने बल दिया कि समन्वय के इन सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाने के लिए संगठन में प्रयास और शोध किया जाना चाहिए।

प्राधिकार, उत्तरदायित्व और नियंत्रण

फॉलेट ने प्राधिकार और नियंत्रण के विषय का भी विश्लेषण किया जो उनके रचनात्मक मतभेदों के विश्लेषण को पूर्णता प्रदान करता है। यद्यपि मतभेद सामान्य जीवन की एक परिटना है, किंतु एक सांगठनिक ढांचे में मतभेद का प्राधिकार और नियंत्रण जैसे अवयवों से अन्तर्सम्बन्ध होता है। फॉलेट के लिए सत्ता काम करवाने, कारणात्मक प्रेरक होने और बदलाव लाने की क्षमता है, जिससे मनचाहे प्रभाव उत्पन्न किए जा सकते है और यह मनुष्यों में पाई जाने वाली सहज प्रवृत्ति है। फॉलेट ने सत्ता के दो स्वरूपों – 'किसी के ऊपर सत्ता' और 'किसी के साथ सत्ता' में भेद किया। पहली बाध्यकारी है और दूसरी समन्वयकारी है अतः इसे संयुक्त सत्ता कहा जाता है। फॉलेट ने किसी के साथ सत्ता को किसी के ऊपर सत्ता से अधिक श्रेयस्कर माना है, क्योंकि यह स्वतः विकसित होती है और समय के साथ अवसरों में वृद्धि करते हुऐ मतभेदों व संघर्षों को कम करती है। फॉलेट का विचार है कि सत्ता कभी सौंपी या वितरित नहीं की जाती और न ही यह छीनी जा सकती है अपितु यह व्यक्तिगत कौशल और योग्यता का परिणाम है। फॉलेट के लिए प्राधिकार निहित सत्ता है। उनके अनुसार सत्ता परिस्थिति और जो कार्य किया जा रहा है, उससे उत्पन्न होती है।

फॉलेट का विचार है कि प्राधिकार के समान ही जिम्मेदारी या उत्तरदायित्व भी कार्य और परिस्थिति की उपज है। इसलिए यह पूछने के बजाए कि अमुक व्यक्ति किसके प्रति उत्तरदायी है, यह पूछना चाहिए कि वह किसके बाद उत्तरदायी है। फॉलेट उत्तरदायित्व की अनेकवादी अवधारणा या यौगिक उत्तरदायित्व पर विश्वास करती हैं और परम उत्तरदायित्व को मिथ्या मानकर अस्वीकार करती हैं।

प्राधिकार और उत्तरदायित्व की भांति नियंत्रण संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण पहलू है। शास्त्रीय विचारधारा से परे फॉलेट मानवीय नियंत्रण के स्थान पर तथ्य नियंत्रण और ऊपर से लादे

Develop India group

गए नियंत्रण के स्थान पर संम्बन्धित नियंत्रण को आवश्यक मानती है। चूंकि तथ्य परिस्थितियों के अनुसार बदल सकते हैं, अतः वरिष्ठ अधिकारियों को अधीनस्थ पर नियंत्रण करते समय परिस्थिति के तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

नेतृत्व

फॉलेट ने नेतृत्व की प्रक्रिया पर भी विचार किया। उनका मानना है कि नेतृत्व की पुरानी अवधारणाएं बदल चुकी हैं। उनके लिए नेता वह नहीं है जो किसी संगठन का प्रमुख हो बल्कि जो परिस्थितियों को समग्रता में देख सकता हो और उन्हें किसी उद्देश्य और नीतियों से समन्वित करने की क्षमता रखता हो। नेता अपने समूह पर बल देता है और पहल को प्रोत्साहित करते हुए प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता का प्रयोग करना जानता है। फॉलेट ने इस संदर्भ में तीन प्रकार के नेतृत्व की चर्चा की।

1. पद से उत्पन्न नेतृत्व
2. व्यक्तित्व से उत्पन्न नेतृत्व
3. कार्य से उत्पन्न नेतृत्व

आधुनिक संगठनों में नेतृत्व वह नहीं कर पाते, जिनके पास पद या व्यक्तित्व हो बल्कि वह कर पाते हैं, जिनके पास विशेषज्ञता हो और दूसरे व्यक्तियों की राय उनसे प्रभावित होती हो। हालांकि वह नेतृत्व में व्यक्तित्व की भूमिका को गौण नहीं मानती। इस प्रकार कार्य से उपजा नेतृत्व महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता जात है।

प्रशासन और प्रबंध पर फॉलेट के विचार आलोचनाओं से परे नहीं हैं। उन्होंने मतभेदों के विश्लेषण में सभी वास्तविक सामाजिक और वर्गीय मतभेदों की अनदेखी कर मात्र मनोवैज्ञानिक मतभेदों पर विचार किया। एकीकरण पर उनके विचारों को भ्रामक कहकर आलोचना की जाती रही है। संगठनों के सामाजिक पहलू को ध्यान में न रखने के कारण भी फॉलेट का लेखन आलोच्य है।

इन आलोचनाओं के होते हुए भी फॉलेट का योगदान महत्त्वपूर्ण है। मतभेद, एकीकरण, नेतृत्व, प्राधिकार और सत्ता पर उनका विश्लेषण बहुआयामी है, नवीनता से भरा है और कुछ अपवादों व कमियों को छोड़कर सार्वभौमिक प्रकृति रखता है। संगठन पर लिखने वाले चिंतकों ने उन्हें शास्त्रीय विचारकों की श्रेणी में भी स्थान दिया। हालांकि उनके चिंतन में व्यवहारवाद की झलक मिलती है।

चेस्टर आई. बर्नार्ड

चेस्टर आई. बर्नार्ड को सामाजिक व्यवस्था पंथ का आध्यात्मिक पिता माना जाता है। वह व्यवहारवादी सिद्धांतों के जनक माने जाते हैं इन्होंने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर संगठनात्मक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अपनी कृति 'द फंक्शन्स ऑफ एक्जीक्युटिव' में उन्होंने सहयोग और संगठन का एक ऐसा सिद्धांत विकसित किया जो एक सहकारी संगठन की व्यवस्था को इंगित करता है। उनके अनुसार सहयोग ही प्रत्येक प्रकार के समूह निर्माण का आधार है।

बर्नार्ड के विचारों का प्रस्थान बिंदु यह प्रस्थापना है कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी जैविक, मनोवैज्ञानिक और शारीरिक सीमाएं होती हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति वृहद् उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किसी न किसी समूह का सदस्य बनता है अन्यथा अकेले इन उद्देश्यों की प्राप्ति असंभव है। इसी आधारभूत संकल्पना के साथ बर्नार्ड ने अपना संगठन का सिद्धांत प्रस्तावित किया। बर्नार्ड के लिए संगठन 'दो या दो से अधिक लोगों की सचेत समन्वित गतिविधियों की व्यवस्था' है, अर्थात् संगठन इस अर्थ में सहकारी व्यवस्था है, जिसका अस्तित्व दो या दो से अधिक व्यक्तियों के सचेतन संचार के परिणामस्वरूप होता है और जिसमें व्यक्ति स्वेच्छा से परस्पर सहयोग करते हुए साझा लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। संगठन निर्माण की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में संचार की प्रभावी भूमिका होती है। बर्नार्ड के लिए इस सहकारी व्यवस्था के निम्नलिखित तीन प्रमुख तत्व हैं :

1. सहयोग करने की इच्छा
2. एक साझा लक्ष्य
3. सचेतन संचार

बर्नार्ड के अनुसार औपचारिक संगठन दो या दो से अधिक की गतिविधियों के समन्वित संयोजन की व्यवस्था है। ऐसा कोई संगठन अस्तित्व में तब आता है जब उपर्युक्त तत्व उपस्थित होते हैं। संगठन में सहयोग के लिए एक उद्देश्य का होना आवश्यक है और यही संगठन का लक्ष्य होता है। इस प्रकार सहकारिता और उद्देश्य के आधार पर एक औपचारिक संगठन का निर्माण होता है। बर्नार्ड यह मानते हैं कि कोई उद्देश्य सहकारी व्यवस्था के तत्व के रूप में कार्य करता है जब तक उसके प्रतिभागी यह देखते हैं कि वह सांगठनिक उद्देश्य व्यक्तिगत उद्देश्य से भिन्न नहीं है।

जब व्यक्ति व्यक्तिगत सम्बंधों के आधार पर संगठन में लगातार एक दूसरे से बातचीत और संचार करते हैं तो ऐसे पारस्परिक सम्पर्क व्यवस्था के अंग बन जाते हैं और अनौपचारिक संगठनों का निर्माण होता है। ऐसे अनौपचारिक संगठन संरचना विहीन और आकारहीन होते हैं किंतु औपचारिक संगठनों के पूरक के रूप में कार्य करते हैं। बर्नार्ड ने संगठन के अनौपचारिक पक्षों पर भी बल दिया और प्रभावी संचार में अनौपचारिक संगठन के महत्त्व पर प्रकाश डाला कि अनौपचारिक संगठन परछाईं की भांति औपचारिक संगठन के साथ चलता है। दोनों ही प्रकार के संगठन एक दूसरे के पूरक और सहगामी हैं।

कोई व्यक्ति समय के किसी बिंदु पर किसी न किसी संगठन का सदस्य अवश्य होता है, अतः वृहद् समाज में उसकी पहचान उसके संगठन के आधार पर होती है। इसीलिए बर्नार्ड ने प्रत्येक मनुष्य को एक सांगठनिक मानव के रूप में देखा है।

योगदान–संतोष संतुलन का सिद्धांत

बर्नार्ड के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि कोई व्यक्ति संगठन में क्यों बना रहता है। उपर्युक्त तत्वों के आधार पर जब एक संगठन का निर्माण हो जाता है तो वह तब तक अस्तित्व में रहता है, जब तक 'योगदान–संतुष्टि संतुलन' संगठन के प्रत्येक सदस्य के लिए बना रहता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति संगठन में तब तक बने रहना चाहते हैं, जब तक वह यह महसूस करते हैं कि उन्हें संगठन से प्राप्त होने वाले प्रतिफल उनके द्वारा संगठन को किए गए योगदान के समानुपात

Develop India Group

में हैं। संगठन और व्यक्ति के बीच इस आगत–निर्गत में यदि कोई अंतर होता है तो व्यक्तियों की सदस्यता संदिग्द्ध होने लगती है, क्योंकि किसी एक व्यक्ति की संतुष्टि में वृद्धि और अन्य व्यक्तियों की असंतुष्टि में वृद्धि के कारण 'योगदान–संतुष्टि' का संतुलन बिगड़ने लगता है। ऐसे असंतुष्ट सदस्य संगठन छोड़ने की ओर प्रवृत्त होते हैं। संगठन में कार्यवाही के तौर पर योगदान तभी संभव है, जब वह लोगों को व्यक्तिगत संतोष के संदर्भ में लाभदायक लगे। अपने योगदान के प्रतिफल के रूप में व्यक्ति को प्राप्त संतुष्टि को संगठन की दृष्टि से प्रोत्साहन या प्रलोभन माना जा सकता है। बनार्ड ने ऐसे चार विशिष्ट एवं चार सामान्य प्रलोभनों की चर्चा की जो निम्नलिखित हैं :

सामान्य प्रलोभन

1. सहयोगियों से मिलनसारिता पर आधारित संयुक्त आकर्षण।
2. काम करने की परिस्थितियों के स्वाभाविक व्यवहार एवं तरीकों में ढालना।
3. घटनाओं के प्रवाह में बढ़ते हुए योगदान की भावना के अवसर।
4. अन्य व्यक्तियों के साथ मिलने की परिस्थितियां, सामाजिक सम्बंधों में व्यक्तिगत सुख पर आधारित परिस्थिति और व्यक्तिगत व्यवहार में आपसी समर्थन।

विशिष्ट प्रलोभन

1. पैसे, वस्तु या भौतिक परिस्थितियां जैसे भौतिक प्रलोभन।
2. विशिष्टता, प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत ताकत के गैर–भौतिक अवसर।
3. काम की वांछनीय भौतिक परिस्थितियां।
4. आदर्श लाभ, पर्याप्तता का बोध, संगठन से वफादारी इत्यादि।

बर्नार्ड का मत है कि एक संगठन में कार्यपालिका का कार्य दिए जाने वाले प्रोत्साहनों को मितव्ययता को बनाए रखने अर्थात् समुचित प्रोत्साहनों का युक्तियुक्त वितरण सुनिश्चित करना है।

प्राधिकार का सिद्धांत

संगठन की चर्चा के क्रम में ही बर्नार्ड ने प्राधिकार का भी विश्लेषण किया। वह प्राधिकार की पारम्परिक अवधारणा से असहमति रखते हुए मानते हैं कि प्राधिकार संगठन में संचार अथवा आदेश का गुण है, जिसकी वजह से किसी संगठन में योगदान करने वाले कर्त्ता उसे स्वीकार करते हैं। बर्नार्ड का मत है कि संगठन में प्राधिकार का स्वीकरण तभी संभव है, जब निम्नलिखित चार परिस्थितियां पूरी होती हों :

1. जब संचार प्राप्तकर्त्ता अथवा ग्राही द्वारा समझने योग्य हो।
2. संचार इस प्रकार का हो कि वह प्राप्तकर्त्ता अथवा ग्राही के व्यक्तिगत हितों के अनुरूप हो।
3. संचार इस प्रकार का हो कि वह संगठन के हितों के अनुरूप हो।
4. प्राप्तकर्त्ता अथवा ग्राही प्राप्त किए गए, संचार अथवा आदेश का पालन करने के लिए मानसिक व शारीरिक रूप से सक्षम हो।

बर्नार्ड के अनुसार अधीनस्थ व्यक्तियों से संगठन में सतत् सहयोग प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि निर्गत किया गया आदेश अधीनस्थ के 'उदासीनता के क्षेत्र' में आता हो। इस अवधारणा से अभिप्राय है कि अधीनस्थ उन आदेशों को सहर्ष स्वीकार करते हैं जो उसके उदासीनता के क्षेत्र में आता हो। बर्नार्ड का मत है कि एक अच्छे कार्यकारी व्यवहार का गुण है कि ऐसे आदेशों को जारी नहीं किया जाना चाहिए जिनका अनुपालन न हो सके। संगठन में प्राधिकार की स्वीकृति उदासीनता के क्षेत्र पर निर्भर करती है। उदासीनता का क्षेत्र दिए गए प्रोत्साहनों और संगठन में व्यक्ति द्वारा किए गए त्याग पर निर्भर करता है। स्पष्ट है कि जब प्रोत्साहन पर्याप्त नहीं होगे तो ऐसे आदेशों का दायरा भी सीमित होगा, जिन्हें स्वीकार किया जा सके और संगठन की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसके आदेश को लोग किस सीमा तक मानते हैं। इस संदर्भ में बर्नार्ड ने प्राधिकार के दो पक्ष बताए हैं :

1. **मनोगत पक्ष :** यह प्राधिकार का नितांत व्यक्तिगत पक्ष है अर्थात् संचार के स्वीकरण सम्बंधी व्यक्ति के कृत्य हैं।
2. **वस्तुगत पक्ष :** यह संचार का गुण है जिसके कारण वह व्यक्ति इसे स्वीकार करता है जिसकी ओर संचार इंगित हो।

कार्यपालिका के प्रकार्य

संगठनों के प्रशासक सहकारी व्यवस्था का संयोजन सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न आवश्यक कार्य करते हैं। बर्नार्ड का मत है कि उनके द्वारा किए जाने वाले सभी कार्य कार्यपालिकीय नहीं होते हैं। कार्यरत संगठन को बनाए रखने के लिए किए जाने वाले विशेष कार्य ही प्रशासकीय कार्य हैं, जिन्हें बर्नार्ड 'कार्यपालिका के प्रकार्यों' की संज्ञा देते हैं। बर्नार्ड ने ऐसे प्रकार्यों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया :

1. संगठनात्मक संचार को बनाए रखना।
2. व्यक्तियों से आवश्यक कार्य लेना।
3. उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण।

बर्नार्ड ने इन प्रकार्यों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि ये मौलिक प्रकार्य ही कार्यकारी के प्रकार्य होते हैं तथापि इनकी पूर्ति सहकारी प्रयास द्वारा ही संभव है और यह कार्यकारी को सुनिश्चित करना होता है कि वह संगठन में समन्वय किस प्रकार प्राप्त कर सकेगा। मात्र उद्देश्यों को परिभाषित कर अधीनस्थों को संचारित करने से संगठन का कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः आवश्यक है कि कार्यकारी अधीनस्थों व समकक्षों के मध्य समन्वय प्राप्त करे।

केनेथ एण्ड्रयू , आर. जे. एस. बेकर आदि ने बर्नार्ड के विचारों की विभिन्न आधारों पर आलोचना की। यथा बर्नार्ड का लेखन व्यावहारिक अनुप्रयोज्यता से अपूर्ण, गूढ़ अर्थों वाला तथा बहुत सामान्य है। एक अन्य आलोचना उपयुक्त उदाहरणों के अभाव को लेकर भी की गई है कि बर्नार्ड ने विशद विश्लेषण तो किया, किंतु उनके लिए समुपयुक्त दृष्टान्त प्रस्तावित न कर सके। संचार का विश्लेषण बर्नार्ड के विचारों का केन्द्र बिंदु है, किंतु संगठन की सफलता अन्य अवयवों पर भी निर्भर है और इस प्रकार बर्नार्ड का लेखन एकांगी प्रकृति से प्रभावित है। बर्नार्ड ने सहकारी प्रयास की महत्ता पर बल दिया, किंतु एण्ड्रयू का मत है कि उन्होने उद्देश्य निर्माण की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं दिया। अधीनस्थ का सहयोग इस बात पर भी निर्भर है कि उद्देश्यों के निर्धारण में उसकी सहभागिता हो अन्यथा आदेशों के अनुपालन के

Develop India Group

संदर्भ में उदासीनता के क्षेत्र की परिधि सीमित और प्राधिकार के स्वीकरण की मात्रा कम ही होगी।

इन आलोचनाओं के बाद भी बर्नार्ड की संगठन की व्याख्या परवर्ती चिंतन के लिए कुशल मार्गदर्शन सिद्ध हुई और उनके विचारों का प्रबंध के सिद्धांतों और व्यवहारों पर काफी प्रभाव पड़ा। उनका लेखन शास्त्रीय संगठन और मितव्ययता के सिद्धांतों में कार्यकारी अनुभवों की अपर्याप्तता का पूरक है। सहयोग को मानव जीवन के साथ–साथ संगठन की आवश्यकता के रूप में स्थापित करने और सहकारी संगठन की अवधारणा ने प्रशासनिक चिंतन में व्यापकता अवश्य प्रदान की है।

साइमन की निर्णयन विचारधारा

साइमन प्रमुख व्यवहारवादी चिंतक थे उनके द्वारा अर्थशास्त्रीय सिद्धांत के साथ दार्शनिक सिद्धांत को समन्वित कर निर्णयन के आधुनिक सिद्धांत की आधारशिला रखी गई है। वह पहले चिंतक थे जिन्होंने दार्शनिक व आर्थिक विचारों को समन्वित कर सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।

साइमन ने अपनी पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर' में निर्णयन प्रक्रिया की व्याख्या की है। साइमन ने निर्णयन की प्रक्रिया को बौद्धिक, अभिकल्पना एवं चुनाव गतिविधि में बांटा है। साइमन के लिए प्रशासन 'कार्य कराने' की कला है। उन्होंने उन प्रक्रियाओं तथा विधियों पर बल दिया, जिनसे कार्यवाही सुनिश्चित हो। निर्णय लेना चयन की वह प्रक्रिया है जिस पर कार्यवाही आधारित होती है।

साइमन द्वारा दी गई प्रशासकीय व्यवहार विचारधारा में सबसे महत्त्वपूर्ण उनका निर्णयन है, अतः वे निर्णयन विचारक के रूप में ख्याति प्राप्त हैं। साइमन के अनुसार संगठन निर्णयन प्रक्रिया का जटिल जाल है। वह निर्णयन को सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन मात्र नहीं मानते हैं, क्योंकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प परिस्थिति विशेष से जुड़ी अवधारणा है। निर्णयन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में क्रियान्वयन भी शामिल है। वह निर्णयन प्रक्रिया को 3 चरणों में विभाजित करते हैं :

1. **अन्वेषण प्रक्रिया :** यह निर्धारित करना कि कब और कहां निर्णय की आवश्यकता है।
2. **डिजाइन प्रक्रिया :** जिसमें विभिन्न विकल्पों की खोज की जाती है।
3. **चयन प्रक्रिया :** सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है।

साइमन के लिए निर्णय तथ्य एवं मूल्यों का संयोग है। तथ्य मापन योग्य साधनों द्वारा मापा जा सकता है, जबकि मूल्य मनोगत रूप से वैध है। यह व्यक्ति की इच्छा की अभिव्यक्ति है। तथ्य व मूल्यों को साधन–साध्य श्रृंखला से समझा जा सकता है।

ये दोनों तत्व निर्णयन के स्वरूप को निर्धारित करते हैं। तथ्य से तात्पर्य है कि कोई वस्तु क्या है, क्या थी या क्या रही है? इनकी पुष्टि की जा सकती है या अस्वीकृत किया जा सकता है। इन्हें मापने योग्य साधनों द्वारा मापा जा सकता है। उदाहरणार्थ– मेज लकड़ी से बनती है, कमरा केंद्रीय ऊष्मीकरण से गर्म किया जाता है इत्यादि। ये सत्य या असत्य होते हैं। इसके विपरीत मूल्य से तात्पर्य पसंदगी से है। प्रातःकाल घूमना अच्छा लगना, पसंदगी की अभिव्यक्ति है। यह मूल्य वक्तव्य है। प्रत्येक निर्णय अनेक तथ्यों और एक या अनेक मूल्य वक्तव्यों का परिणाम होता है। दूसरे शब्दों में, निर्णय एक मूल्य वक्तव्य तथा अनेक तथ्य वक्तव्यों का समन्वय है। साइमन ने इसे एक उदाहरण से समझाते हुए कहा कि मानो एक सेनापति आक्रमण की पद्धति के बारे में निर्णय करना चाहता है। वह इसे मूल्य (या महत्त्व) वक्तव्य से प्रारम्भ करता है। मुझे आक्रमण करना चाहिए, शत्रु पर आक्रमण सफलतापूर्वक करना चाहिए। यह मूल्य कथन है। इसके विपरीत तथ्य वक्तव्य है कि अचानक आक्रमण ही सफल होता है। यह तथ्य अनेक पूर्व अनुभवों पर आधारित है। द्वितीय, एक अन्य तथ्य कथन यह है कि अचानक आक्रमण की स्थितियों में आक्रमण का स्थान व समय निहित होता है। इन दोनों तथ्य कथनों को मूल्य कथनों से संयुक्त करना 'आक्रमण' की सफलता के लिए आवश्यक है। इस उचित तथ्य एवं मूल्य सम्बंधी कथनों को संयुक्त करने पर निर्णय संभव होता है अर्थात् आक्रमण का समय व स्थान व सफलतापूर्वक आक्रमण का संयोग आक्रमण सम्बंधी निर्णय लेने के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार निर्णयन प्रक्रम तथ्य कथनों एवं मूल्य कथनों के संयोग पर निर्भर है। जिस मूल्य कथन से कोई प्रारम्भ करता है, वह प्रथम मूल्य कथन है और उसके बाद द्वितीय स्तर के कथन होते हैं।

सैद्धांतिक महत्त्व की इस प्रक्रिया से सही निर्णय का चयन करते हुए संगठन के लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है। निर्णय लेने के लिए विकल्पों का चुनाव करते समय वह उस प्रक्रिया को चुनता है, जिससे उसे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हो। निर्णयन अनेक विकल्पों में से एक सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है।

साइमन ने कहा कि व्यक्ति को प्रेरित करने के लिए आर्थिक कारकों के साथ–साथ सामाजिक–मनोवैज्ञानिक कारक भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए साइमन ने 'सीमित तार्किकता' की अवधारणा प्रतिपादित की। व्यक्ति सदैव पूर्ण तार्किक निर्णय न तो लेता है तथा न ही ले सकता है। इसके विपरीत व्यक्ति श्रेष्ठ निर्णय लेना चाहते हैं, किंतु वे कम अच्छे निर्णय पर ही सहमत हो जाते हैं। ऐसा तब होता है, जब समस्या पर निर्णय लेने के लिए उन्हें अधिक सूचनाओं की आवश्यकता होती है और इन सूचनाओं के विश्लेषण के लिए अधिक योग्यताओं की आवश्यकता होती है जो प्रायः प्रत्येक निर्णयकर्त्ता में नहीं होती। अतः वे 'सीमित तार्किकता' के आधार पर निर्णय लेने हेतु सहमत हो जाते हैं। सीमित तार्किकता के अंतर्गत लिया गया निर्णय व्यक्ति को पर्याप्त संतोष प्रदान करता है। इस प्रकार साइमन 'सैटिसफाइसिंग' (जपेलिपदह) व्यवहार के प्रतिपादक माने जाते हैं, जो (नापिबपदह) पर्याप्त और संतोष (जपेबिजपवद) से मिलकर बना है। और निर्णयकर्त्ता को अधिकतम संतोष के बजाए पर्याप्त संतोष प्रदान करता है।

यह सीमित तार्किकता अनेक पर्यावरणीय कारकों के कारण उत्पन्न होती है। साइमन ने सीमित तार्किकता के आधार पर निर्णयन के निम्नलिखित 6 प्रकार बताए हैं :

1. **वस्तुगत तार्किक :** दी गई परिस्थितियों के अनुसार मूल्यों को बढ़ाता है।
2. **विषयगत तार्किक :** विषय–संबंधी वास्तविक ज्ञान को अधिकतम बनाता है।

Develop India Group

3. **सचेत तार्किक :** साधन–साध्य का समायोजन एक चेतन प्रक्रिया के रूप में होता है।
4. **जानबूझकर तार्किक :** साधन–साध्य को जानबूझकर समायोजित किया जाता है।
5. **व्यक्तिगत तार्किक :** व्यक्तिगत लक्ष्यों की ओर उन्मुख होता है।
6. **संगठनात्मक तार्किक :** संगठन के लक्ष्यों की ओर उन्मुख होता है।

प्रशासकीय मानव प्रतिमान

साइमन ने आर्थिक व सामाजिक मानव के मध्य के प्रतिमान को प्रशासनिक मानव प्रतिमान की संज्ञा दी है, जो न तो आर्थिक मानव की भांति पूर्ण तार्किकता के आधार पर निर्णय लेता है और न ही सामाजिक मानव की भांति पूर्ण भावुकता के आधार पर, बल्कि प्रशासनिक मानव अनेक पर्यावरणीय सीमाओं के कारण सीमित तार्किकता के आधार पर निर्णय लेता है। इसके निर्णयन को सीमित तार्किक बनाने में निम्नलिखित पर्यावरणीय कारक उत्तरदायी हैं :

1. उद्देश्यों की प्रकृति
2. सूचना टक
3. समय व लागत बाध्यताएं
4. पर्यावरणीय टक
5. विकल्पों की प्रकृति
6. विकल्पों के बारे में जागरूकता
7. व्यक्तिगत कारक
8. संगठनात्मक कारक

प्रशासनिक मानव निम्नलिखित चरणों में निर्णय प्रक्रिया का सम्पादन करता है :

1. लक्ष्य/उद्देश्य निर्धारण
2. आकांक्षा स्तर का निर्धारण
3. विकल्पों की तलाश
4. उपयुक्त विकल्प न मिल पाना
5. आकांक्षा स्तर का पुनः समायोजन
6. विकल्पों की तलाश
   क. अस्वीकार
   ख. स्वीकार
7. विकल्पों का मूल्यांकन
8. निर्णय का क्रियान्वयन

इस प्रकार साइमन ने अपनी निर्णयन विचारधारा पर अद्वितीय योगदान के माध्यम से प्रबंध सिद्धांत एवं व्यवहार में एक नवीन दृष्टि का परिचय दिया। उन्होंने परिष्कृत शोध–विधियों एवं प्रयोगात्मक अनुसंधानों पर बल दिया।

साइमन ने पारम्परिक सिद्धांत के एक पक्षीय स्वरूप की कड़ी आलोचना की। उन्होंने पाया कि परम्परागत सिद्धांत में कई त्रुटियां व विरोधाभास हैं, जिसके चलते वह सिद्धांत नियंत्रित व वैज्ञानिक दशाओं में अनुपयुक्त होते हैं। साइमन ने उन पारम्परिक सिद्धांतों को कहावतों व मुहावरों की संज्ञा दी जो युग्मों में निर्मित हैं। इन युग्मों में दोनों सिद्धांत परस्पर विरोधी हैं, लेकिन कौन–सा सिद्धांत व्यावहारिक है इस पर यह विचारधारा मौन है जैसे केंद्रीकरण–विकेंद्रीकरण आदि। साइमन ने संगठन व व्यक्ति दोनों पर ही वाह्य पर्यावरण का प्रभाव स्वीकारा है। व्यक्ति को प्रेरित करने के लिए आर्थिक के साथ–साथ सामाजिक व मनोवैज्ञानिक कारक भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

निर्णयन की प्रक्रिया संगठन की पूरी तस्वीर अकेले समझा पाने में पर्याप्त नहीं है। नॉर्टन ई. लांग ने साइमन के मूल्य निरपेक्ष प्रशासनिक प्रयासों की आलोचना करते हुए कहा कि इससे अनचाहे और तार्किक रूप से अप्रासंगिक परिणाम के तौर पर नीति प्रशासन विभाजन की नए मुहावरों में पुनरावृत्ति और प्रशासन को औजार की तरह देखने की अतार्किक दृष्टि पैदा हो सकती है। साइमन ने पारिस्थितिकी परिवर्तन को दरकिनार करते हुए बताया कि प्रशासन सभी समाजों में एक सी भूमिका निभाता है। निर्णयन को बहुत सामान्य कहकर आलोचना की गई और कहा गया कि जब वह ढांचा देता है तो संगठनों के नियोजकों का मार्गदर्शन करने के लिए निश्चित जानकारी नहीं देता है।

साइमन के निर्णयन मॉडल में अवधारणात्मक संरचना अपर्याप्त है। इन्होंने अपना विश्लेषण एक संगठन के भीतर व्यक्ति तक सीमित रखा, साइमन ने समस्त सामाजिक व्यवस्था, जिसमें संगठन काम करता है पर ध्यान केंद्रित नहीं किया। यह उपागम सामान्य है तथा व्यावहारिक रूप से संगत नहीं है। साइमन की विचारधारा उनसे पूर्व दी गई विचारधाराओं के मिश्रण का विद्वतापूर्ण लेखन मात्र है। निर्णयन पर समग्रता से अधिक बल दिया गया है। तार्किकता की अवधारणा में भौतिक स्थितियों तथा ठोस ऐतिहासिक परिस्थिति को शामिल नहीं किया गया है। मूल्यों से स्वतंत्र तथा तटस्थ उपागम सहायक नहीं है। जहां उपागम ने मूल्य निर्णय का विश्लेषण करने का प्रयास किया, वहां तार्किकता की धारणा ने नैतिक प्रश्नों को छोड़ दिया।

इन आलोचनाओं के बाद भी साइमन का महत्त्व कम नहीं हुआ। साइमन को व्यवहारवादी तथा व्यवस्थावादी दोनों सिद्धांतों से जोड़ा गया। साइमन का निर्णयन प्रतिमान आज भी उपयोगी है। उनका योगदान बेहतर स्वीकार्य मूल्यों, विश्वस्तरीय नैतिकता, मूल्यों व तथ्यों के अंतर को दूर करने में देखा जा सकता है। वस्तुतः आज भी प्रशासन की सफलता प्रभावी निर्णय निर्माण पर ही निर्भर करती है।

सरकारी तंत्र में मूल्य मुक्त निर्णय लेना वस्तुतः सम्भव नहीं है, क्योंकि निर्णयन पर सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव होता है। यही कारण है कि समान परिस्थिति में कोई शीघ्र निर्णय लेता है तो कोई देर से। इसके अतिरिक्त निर्णयन में पर्याप्त अंतर होता है, परस्पर विरोधी निर्णय भी हो सकते हैं।

निर्णयन पर व्यक्तिगत कारकों का भी महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। निर्णय राजनीतिक मूल्यों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। निर्णय आम जनता की परिवर्तनशील मांगों व समस्याओं के लिए प्राथमिकतानुसार लिया जाता है। इन सभी बातों व प्राथमिकताओं को निर्धारित करने में मूल्य अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। इसलिए सरकारी तंत्र में मूल्य–मुक्त निर्णय नहीं लिए जा सकते। वस्तुतः मूल्य–मुक्त निर्णय सरकारी तंत्र

Develop India Group

को निरंकुश, संवेदनहीन व यांत्रिक बना देगा।

सरकारी निर्णयों को अधिक तर्कसंगत बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं :

1. प्राथमिकताओं, समस्याओं के निर्धारण में व्यक्तिगत मूल्यों से प्रभावित होने के बजाए लोकोन्मुखता पर अधिक निर्भर रहा जाए।
2. निर्णय करने में ज्ञान, राष्ट्रीय महत्त्व की उपेक्षा न की जाए।
3. निर्णयन में अनेक प्रकार की राजनीतिक संकीर्णताओं एवं स्वार्थों से पूरी तरह मुक्ति पाई जाए।
4. निर्णयन में कम्प्यूटरों के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाए।
5. निर्णयन की तकनीकों जैसे – अनुरूपण, गेम थ्योरी आदि को बढ़ावा दिया जाए।
6. निर्णयन की सामूहिक शैलियों जैसे – डेल्फी तकनीक, नाममात्र की समूह तकनीक या राउंड रोबिन पद्धति आदि के प्रयोग पर बल दिया जाए।

आधुनिक प्रशासनिक विचारधारा में सहभागी प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह परिप्रेक्ष्य संगठन के कर्मचारियों को संगठन का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानते हुए निर्णय प्रक्रिया एवं पद्धतियों में उनको सक्रिय रूप से सम्बन्धित करने पर बल देता है। दूसरे शब्दों में यह परिप्रेक्ष्य कर्मचारियों की निर्णयन प्रक्रिया में उस सीमा तक भागीदारी देने का पक्षधर है, जहां तक निर्णयन उनके हितों को प्रभावित करता हो। इस प्रकार संगठन में लोकतांत्रिक नेतृत्व और प्रशासन में मानवीय तत्वों का समावेश संभव हो पाता है। परम्परागत मान्यताओं से परे आज श्रमिकों व कर्मचारियों की बढ़ती हुई शक्ति ने प्रबन्धकों को उनके साथ सहभागिता से कार्य करने का मार्ग प्रशस्त किया है और जिसे उत्साहजनक व सकारात्मक समर्थन भी प्राप्त हुआ है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि सहभागी प्रबन्ध का अर्थ कर्मचारियों द्वारा सम्बन्धित संगठन की निर्णय देने वाली प्रक्रिया में उस समय तक भाग लेना है, जहां तक यह इनके हितों पर प्रभाव डालता हो। इस विचारधारा के प्रमुख चिंतक डगलस मैकग्रेगर, रेंसिस लिकर्ट व क्रिस आर्गिरिस इत्यादि हैं।

डगलस मैकग्रेगर का योगदान

डगलस मैकग्रेगर एक व्यवहारवादी और मनोवैज्ञानिक चिंतक हैं। उन्होंने मैस्लो के अभिप्रेरणा सिद्धांत से सहमति व्यक्त करते हुए 'एक्स सिद्धांत' और 'वाई सिद्धांत' का प्रतिपादन किया। उनका वाई सिद्धांत सहभागी प्रबंध की स्थापना पर बल देता है।

एक्स सिद्धांत : यह सिद्धांत इस धारणा पर आधारित है कि स्वभावतः प्रत्येक व्यक्ति काम से बचना चाहता है। अतः उससे काम लेने के लिए नकारात्मक अभिप्रेरण आवश्यक है और उसे भय दिखाकर कार्य लिया जा सकता है। इस प्रकार एक्स सिद्धांत मनुष्य को सुस्त, आकांक्षा न रखने वाला, परिवर्तन विरोधी, अरचनात्मक और शिथिल मानता है। यह मनुष्य की नकारात्मक प्रवृत्ति को संदर्भित करता है।

वाई सिद्धांत : यह अभिप्रेरणा की आधुनिक विचारधारा है, जिसमें मैकग्रेगर ने एक्स सिद्धांत की दुर्बलताओं के निवारण का वर्णन किया। वाई सिद्धांत मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वभाव से ही निष्क्रिय व अविश्वसनीय नहीं होता। यदि उसे विधिवत् प्रोत्साहित किया जाए तो वह स्वयं कार्य के प्रति निष्ठावान होकर श्रेष्ठतर उत्पादन स्तर प्राप्त कर सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में संगठनात्मक समस्याओं के निवारण की रचनात्मक क्षमता होती है और प्रबन्धकों को ऐसी क्षमता के विकास के लिए कार्य करना चाहिए। यह सिद्धांत लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत लक्ष्यों और संगठन के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित करना है। वाई सिद्धांत की प्रमुख मान्यताएं इस प्रकार हैं :

1. कार्य में भौतिक तथा मानसिक प्रयत्नों पर व्यय उतना ही प्राकृतिक है जितना खेल और आराम पर।
2. वाई सिद्धांत कार्यकर्त्ता में आत्मनिर्दिष्टता, आत्म नियंत्रण और सामूहिक प्रयोगों पर उन लक्ष्यों को पाने की दिशा में बल देता है जिनको पाने के लिए वह वचनबद्ध है।
3. लक्ष्यों के प्रति वचनबद्धता उनकी उपलब्धियों से सम्बन्धित पुरस्कारों का परिणाम है।
4. औसत मनुष्य उपयुक्त परिस्थितियों के अन्तर्गत न केवल जिम्मेदारी स्वीकारना अपितु उन्हें खोजना भी सीखता है।
5. संगठनात्मक समस्याओं के निदान में अपेक्षाकृत उच्चस्तरीय सृजनात्मकता, कल्पना और प्रवीणताओं को प्रयोग करने की क्षमता आबादी में संकीर्ण रूप से नहीं बल्कि विस्तृत रूप से बंटी होती है।
6. आधुनिक औद्योगिक जीवन की दशाओं के अन्तर्गत औसत मनुष्य की बौद्धिक क्षमताएं आंशिक रूप से ही प्रयोग में लाई जाती हैं।

मैकग्रेगर ने वाई सिद्धांत के अन्तर्गत कार्यकर्त्ता पर खुले नियंत्रण का प्रस्ताव किया। उनका मानना है कि प्रबंधकों को कार्यकर्त्ता के वाई गुणों का विकास करने का प्रयास करना चाहिए।

रेंसिस लिकर्ट का योगदान

संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में लिकर्ट ने प्रबन्धकीय कुशलता पर प्रकाश डाला। उन्होंने कार्य केन्द्रित पर्यवेक्षण शैली के बजाए कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण शैली पर बल देते हुए निम्न चार प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था का उल्लेख किया :

1. शोषक तानाशाह
2. उदार तानाशाह
3. परामर्शी
4. सहभागी

प्रथम प्रकार की व्यवस्था कार्यकेन्द्रित है। इसमें प्रबन्धकीय प्रणाली परम्परागत विधि द्वारा नियंत्रित होती है, जबकि चतुर्थ प्रकार लोकतांत्रिक व्यवस्था है जिसमें टीम कार्य, आपसी विश्वास, और सहभागिता पाई जाती है। शेष दो व्यवस्थाएं इनके बीच होती हैं। अपने प्रयोग द्वारा लिकर्ट ने यह सिद्ध किया कि चतुर्थ प्रकार की व्यवस्था से उत्पादन की वृद्धि होती है तथा यह श्रमिकों से संगठन में कार्य लेने में समर्थ है। यही एक अवस्था है जिसमें प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को कार्य करने के लिए अधिक अभिप्रेरित करके टीम भावना जाग्रत करता है और आपसी विश्वास तथा प्रबंध के प्रति आस्था का विकास करता है। सारतः

Develop India Group

सहभागी प्रबंध की दिशा में लिकर्ट का यह विश्लेषण अद्वितीय है।

क्रिस आर्गिरिस का योगदान : भागीदारी प्रबंध के आदर्श में आर्गिरिस व्यक्ति के संगठन के साथ सम्बंधों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उन्होने व्यक्ति की सामाजिक–मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और संगठन की आपातकालीन परिस्थितियों के बीच अंतरविरोधों का विश्लेषण किया। आर्गिरिस का मत है कि भविष्य के संगठन पुराने व नए दोनों प्रकार के संगठनों के सम्मिश्रण होंगे, जिन्हें वह मैट्रिक्स संगठन कहते हैं। इस प्रकार की सांगठनिक संरचना के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के पास बराबर की क्षमता होती है। ऐसी सांगठनिक संरचना उच्चस्थ–अधीनस्थ सम्बंधों के स्थान पर व्यक्तिगत स्व–अनुशासन स्थापित करने की आशा करती है। विशेष समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रोजेक्ट दलों का निर्माण, टी–ग्रुप ट्रेनिंग, (संवेदनशीलता का प्रशिक्षण) कामों को बड़े स्तर तक बांटकर करने की प्रविधियां आदि इसी से जुड़ी प्रमुख विशेषताएं हैं।

सहभागी प्रबंध की बाधाएं एवं दूर करने के उपाय : वर्तमान परिदृश्य में सहभागी प्रबंध की लोकप्रियता काफी बढ़ चुकी है तथापि इसे प्राप्त करने में कुछ व्यावहारिक समस्याएं हैं, यथा :

1. यह आवश्यक नहीं कि संगठन के प्रत्येक कार्य के लिए सहभागी प्रबंध व्यावहारिक हो। कुछ कार्य गोपनीय प्रकृति के होते हैं और उनमें सभी कार्यकर्त्ताओं को शामिल नहीं किया जा सकता।
2. तकनीकी प्रकृति के कार्यों में निम्न स्तर के कार्यकर्त्ता में बौद्धिकता, ज्ञान, कौशल इत्यादि का अभाव होता है, अतः उनको प्रबंध की गतिविधि में शामिल करना श्रेयस्कर नहीं है।
3. मानव संसाधन विकास के विषय पर भी यह दृष्टिकोण मौन है और यह निश्चित नहीं हो पाता कि किस प्रकार सभी कार्यकर्त्ताओं को अपेक्षित स्तर के कौशल पर लाया जा सके ताकि प्रबंध में उनकी भागीदारी व्यावहारिक हो।
4. सहभागी प्रबंध को प्राप्त करने में एक अन्य बाधा संगठनात्मक कार्य संस्कृति की है। कार्मिक संघों के सकारात्मक सहयोग पर ही इसकी सफलता निर्भर करेगी अन्यथा यह मात्र एक सैद्धांतिक विकल्प ही सिद्ध हो सकेगा।

हालांकि इन बाधाओं के बावजूद सहभागी प्रबंध दृष्टिकोण की उपयोगिता है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए संगठन में उपयुक्त कार्मिक प्रशिक्षण, वृत्ति विकास व्यवस्था और कार्य संस्कृति में सहयोगी प्रवृत्ति के विकास की आवश्यकता है। यह भी समीचीन होगा कि कार्यकर्त्ता के नकारात्मक गुणों के प्रभावों को न्यून करने के लिए उपयुक्त अभिप्रेरणा और उसकी पहलशक्ति के विकास के अवसर प्रदान किए जाएं। मात्र औपचारिक वार्ता के स्तर पर निर्णय में शामिल कर लेना ही सहभागिता सुनिश्चित नहीं करता अपितु कार्यकर्त्ताओं में संगठन से संलग्नता और ऐसी मनोवृत्ति का विकास किया जाना आवश्यक है।

मानवीय मूल्य – महान नेताओं सुधारकों और प्रशासकों के जीवन तथा उनके उपदेशों से शिक्षा

चाणक्य

आज से करीब 2300 साल पहले पहले पैदा हुए चाणक्य भारतीय राजनीति और अर्थशास्त्र के पहले विचारक माने जाते हैं। पाटलिपुत्र (पटना) के शक्तिशाली नंद वंश को उखाड़ फेंकने और अपने शिष्य चंदगुप्त मौर्य को बतौर राजा स्थापित करने में चाणक्य का अहम योगदान रहा। ज्ञान के केंद्र तक्षशिला विश्वविद्यालय में आचार्य रहे चाणक्य राजनीति के चतुर खिलाड़ी थे और इसी कारण उनकी नीति कोरे आदर्शवाद पर नहीं, बल्कि व्यावहारिक ज्ञान पर टिकी है। आगे दिए जा रहीं उनकी कुछ बातें भी चाणक्य नीति की इसी विशेषता के दर्शन होते हैं :

किसी भी व्यक्ति को जरूरत से ज्यादा ईमानदार नहीं होना चाहिए। सीधे तने वाले पेड़ ही सबसे काटे जाते हैं और बहुत ज्यादा ईमानदार लोगों को ही सबसे ज्यादा कष्ट उठाने पड़ते हैं।

अगर कोई सांप जहरीला नहीं है, तब भी उसे फुफकारना नहीं छोड़ना चाहिए। उसी तरह से कमजोर व्यक्ति को भी हर वक्त अपनी कमजोरी का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

सबसे बड़ा गुरुमंत्र : कभी भी अपने रहस्यों को किसी के साथ साझा मत करो, यह प्रवृत्ति तुम्हें बर्बाद कर देगी।

हर मित्रता के पीछे कुछ स्वार्थ जरूर छिपा होता है। दुनिया में ऐसी कोई दोस्ती नहीं जिसके पीछे लोगों के अपने हित न छिपे हों, यह कटु सत्य है, लेकिन यही सत्य है।

अपने बच्चे को पहले पांच साल दुलार के साथ पालना चाहिए। अगले पांच साल उसे डांट–फटकार के साथ निगरानी में रखना चाहिए। लेकिन जब बच्चा सोलह साल का हो जाए, तो उसके साथ दोस्त की तरह व्यवहार करना चाहिए। बड़े बच्चे आपके सबसे अच्छे दोस्त होते हैं।

दिल में प्यार रखने वाले लोगों को दुख ही झेलने पड़ते हैं। दिल में प्यार पनपने पर बहुत सुख महसूस होता है, मगर इस सुख के साथ एक डर भी अंदर ही अंदर पनपने लगता है, खोने का डर, अधिकार कम होने का डर आदि–आदि। मगर दिल में प्यार पनपे नहीं, ऐसा तो हो नहीं सकता। तो प्यार पनपे मगर कुछ समझदारी के साथ। संक्षेप में कहें तो प्रीति में चालाकी रखने वाले ही अंततः सुखी रहते हैं।

ऐसा पैसा जो बहुत तकलीफ के बाद मिले, अपना धर्म–ईमान छोड़ने पर मिले या दुश्मनों की चापलूसी से, उनकी सत्ता स्वीकारने से मिले, उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए।

नीच प्रवृति के लोग दूसरों के दिलों को चोट पहुंचाने वाली, उनके विश्वासों को छलनी करने वाली बातें करते हैं, दूसरों की बुराई कर खुश हो जाते हैं। मगर ऐसे लोग अपनी बड़ी–बड़ी और झूठी बातों के बुने जाल में खुद भी फंस जाते हैं। जिस तरह से रेत के टीले को अपनी बांबी समझकर सांप घुस जाता है और दम घुटने से उसकी मौत हो जाती है, उसी तरह से ऐसे लोग भी अपनी बुराइयों के बोझ तले मर जाते हैं। जो बीत गया, सो बीत गया। अपने हाथ से कोई गलत काम हो गया हो

Develop India Group